

विश्वकवि रवीन्द्र
की १२५वी जयन्ती
के अवसर पर
प्रकाशित

काव्याञ्जलि
सम्पादक
ऋचिनाथ मिश्र
सहयोग
वसुमति डागा
आवरण
मदन सूदन

प्रकाशक
स्वर समवेत
६ तनसुक लेन
कलकत्ता-७००००७

मूल्य
बीस रुपये

सुद्वक भाग्यचन्द सुराना
सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स
२०५, रवीन्द्र सरणी
कलकत्ता-७००००७

KAVYANJALI

Poetic tribute to Tagore by some eminent Hindi poets
Edited By CHHAVI NATH MISHRA

रवीन्द्र-प्रसंग

●
कविता, मनुष्य क हाते रहने या उसक बा रहने की अन्तयात्रा की खिलावट का नाम है सुगन्ध लिखन का शिल्प है और माननीय अस्तित्व अथवा इतिहास-त्रोध का आधारभूत यथार्थ है। यह यथार्थ, यह शिल्प जय आत्म-प्रकर्ष की माधना क साथ विश्व-प्रम की भूमिका में खुलता है तब कवि-चेतना किसी विश्व-द्रष्टा और युगल्लष्टा कवि-मूर्ति का रूप ले लेती है। रवीन्द्रनाथ उगी कवि-चेतना की कवि मूर्ति एक प्रबुद्ध पुरोधा थे। जहाँ लोकोत्तर चेतना एक लोक-चेतना दोनों में समन्वय स्थापित करना ही काव्य चेतना की मुख्य शर्त हुआ करती है। मानवता-बोध की दिशा में इस शर्त को उजागर करना कविता की एक जरूरी भूमिका है। रवीन्द्रनाथ इसी भूमिका में भूमि और भूमा की क्रान्तप्रण प्रतिभा क कवि रहे हैं। वे हमारे सामने अपनी रचनाओं क माध्यम से एक नये जीवन दर्शन के प्रवक्ता के रूप में उभरते हैं और चेतना के स्तर पर नये भारत की षटभूमि में प्रबुद्ध एक यथार्थ भारत की तलाश को दिशा देते हैं। उन्होंने जो भी लिखा, जितना भी लिखा, जैसा भी लिखा और साहित्य की जिम किमी विधा में लिखा—सब के मूल में मानवतावादी दृष्टि की समग्रता ही अत्यधिक सुखर है।

रवीन्द्रनाथ मूलतः कवि थे। रस-पिपासु और रसस्रष्टा थे, किन्तु उनकी प्रातिभ शक्ति के आलोक में साहित्य के विविध पक्ष मानवीय सम्बन्धों एवं सरोकारों की गहरी अर्थवत्ता के साथ उभरें हैं। बाह्य सौन्दर्य एवं अन्त-सौन्दर्य की भूमिका में प्रकृति-सौन्दर्य, सौन्दर्य बोध तथा नारी चेतना को विम्बों एवं प्रतीकों के माध्यम से जिस उज्ज्वल मानसिकता की भूमि पर उन्होंने उकेरा है, उसे तीमरी आँखों की रोशनी में ही पढ़ा समझा जा सकता है।

उन्होंने अपने 'जीवन देवता' की आराधना एवं साधना में जिन उदात्त जीवन-मूल्या को जिया और उन्हें सकर्मकता की भाषा दी उसके आलोक में उनके विचार-संस्कार, काव्य-संबंधना एवं कर्म-प्रवणता के पीछे एक लोकोत्तर या वृहत् चेतना से जुड़े परिवेश एवं जन-मानस की रचना का आग्रह ही क्रियाशील रहा। उनकी लोकोत्तरता जीवन से पलायन नहीं, न तथाकथित आध्यात्मिकता और न दार्शनिक आदर्शवाद जैसी थी बल्कि उनके जीवन का यही परम सत्य था। वही उनके रचना-संसार का वैचित्र्य था। जिसकी सहज दीप्ति उनकी कविता 'सृष्टि' में दस प्रकार उभरती है—

‘अमरं यन्मघनं माझ महानन्दमय
लभिन्नु मुत्तिर स्वाद । एह वसुधार
मृत्तिरार पात्रम्बानि भरि वारम्भार
तोमार अमृत ढाल दिव्ये अविरत
नाना वर्णगन्धमय । प्रदीपर मतो
ममन्त ममार मार ल न वतिनाय
ज्वालाए तुलिये आत्मो तोमारि शिग्गाय
तोमार मन्दिर-माय ।”

उसी मुनिचिता विश्वकवि ११२५वें जन्म दिन पर 'कवि-प्रणाम' के रूप में प्रस्तुत का-याजाल स्वर समवत का एक लघु रचनारमक प्रणाम है। अपनी रचनाओं के द्वारा अश्रुत प्रणाम में हिन्दी के जिन प्रतिष्ठित कवियों एवं कवयित्रियों ने अंग प्रणाम जाल को समृद्ध किया है—उन्हें स्वर-समवत की इस मार्गदर्शक भूमिका का आकार करने की दिशा में रचना महाराज के लिये अन्तर्गता आभार।

छविगत मिश्र

रवीन्द्रनाथ की प्रासंगिकता

मानव-मूल्या व सदर्भ में साहित्य और स स्मृतिक विरासत का मूल्यांकन कोई नयी बात नहीं। परंपरा के मही आकलन के लिए उसका परीक्षण, उसकी प्रासंगिकता और मूल्यांकन तथा पुनर्मूल्यांकन आवश्यक है। क्योंकि मानव-जीवन के प्रतिमान अपने समय के राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक प्रश्नों से गहरे रूप में संपृक्त होते हैं।

संस्कृति का अर्थ इतिहास के साथ बदलता रहा है। कृति और कृतिकार की प्रासंगिकता भी परिवर्तित हो रहे युग और समाज में नए प्रश्नों के साथ उपस्थित होती है। यही कारण है कि समाज द्वारा स्वीकृत जीवन-प्रतिमान और अवधारणाओं की कगौटी पर साहित्य को परखने और उसे मूल्यांकित करने की आवश्यकता प्रत्येक युग में पड़ती है।

रवीन्द्रनाथ ने महामानव के भागरतट पर बैठकर जिस साहित्य की सर्जना की वह अपने आप में सागर का विस्तार और गहराई लिए हुए है। उसका अवगाहन और मूल्यांकन सहज नहीं।

महाभारत काल में ही इस तरह की धारणा—यद्गमूल रही है कि भारत प्राकृतिक दृष्टि से ही नहीं, सांस्कृतिक दृष्टि से भी एक इकाई है। भारतीय मनीषा ने सभ्यता के प्रारम्भिक काल में ही भौगोलिक और सांस्कृतिक एकता का स्वप्न देखे और अपनी रचनाओं में उस मूर्त रूप दिया। देश की एकता, अखण्डता, मानवीय प्रेम, राष्ट्रीय स्वाधीनता और विश्व बंधुत्व की भावना के अमर गायक कवि गुरु रवीन्द्रनाथ भारतीय संस्कृति की अन्यतम धरोहर हैं।

उन्नीसवीं शती के बंगाल में मनीषा का जो प्रखर आवग उठा था—रवीन्द्रनाथ उस सांस्कृतिक नवजागरण के अग्रदूत बनकर उपस्थित हुए। उनका साहित्य भारत की सांस्कृतिक निरामत और जातीय चेतना के नए आयाम उद्घाटित करता है।

भारत की जिस नयी राष्ट्रीयता और नयी संस्कृति का स्वप्न उन्होंने रखा था—वह महाकवि के व्यापक युग चिन्तन और आधुनिक दृष्टि-कोण का परिचायक है। उनका साहित्य नवीन युग चेतना, मानव मुक्ति, स्वाधीनता और मानव प्रेम का मन्त्र है। महाकवि कालिदास की भाँति रवीन्द्रनाथ भी प्रेम, मौन्दर्य और मानवीय एकता के कान हैं। भारत और विशेषकर बंगाल की जनता ने उनकी रचनाओं में देश प्रेम, स्वाधीनता और मानव मुक्ति का मन्त्र प्राप्त किया। उनकी प्रासंगिकता केवल इस बात में नहीं है कि वे

प्रेम, सौन्दर्य और मानवीय एकता के कवि हैं यद्यपि इस बात में है कि उनका साहित्य भारतीय जनता की साम्राज्यवाद विरोधी चेतना और उसके मुक्तिकामी संघर्ष का दर्पण है।

रवीन्द्रनाथ का आध्यात्मिक चिन्तन मनुष्य के भौतिक और सामूहिक कल्याण की चिन्ता से युक्त है। देश प्रेम, स्वाधीनता, साम्राज्यवाद विरोधी चेतना, मानवीय एकता और विश्व बंधुत्व की भावना की वह प्रखर अभिव्यक्ति जो उनके साहित्य में देखने को मिलती है—अन्यत्र दुर्लभ है। उनका साहित्य भारतीय संस्कृति की सामासिक चेतना, उसकी मूलभूत एकता को अपनी विविधता के साथ विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त करता है।

रवीन्द्रनाथ तीन संस्कृतियों के मिलन-बिन्दु पर खड़े थे—प्राचीन भारतीय संस्कृति, इस्लामी संस्कृति और युरोपीय संस्कृति। तीन संस्कृतियों के मिलन से भारत में जो नयी संस्कृति विकसित हो रही थी—महाकवि टैगोर उस नयी और अनोखी संस्कृति को अपना रहे थे। प्राचीन और नवीन का सम्मिश्रण और समावेश कवि गुरु के साहित्य का निजी वैशिष्ट्य है।

गॉलजाक की तरह रवीन्द्रनाथ भी आभिजात्य वर्ग के थे। उन्होंने दुनिया को आभिजात्य वर्ग के चश्मे से ही देखा है। गॉलजाक ने आभिजात्य जीवन के खोखलेपन, पतनोन्मुख सामन्ती समाज उनके क्षय घस्त जीवन मूल्य और अन्तर्विरोध का जैसा धारदार चित्रण किया है—रवीन्द्रनाथ ने वैसा नहीं किया। परन्तु बाद की रचनाओं में मध्यमवर्गीय मनोवृत्ति को अतिरिक्त धारण का प्रयास अन्त्य में उल्लेखनीय है। उनका अन्तिम उपन्यास “योगायोग” इस संदर्भ में उल्लेखनीय है। “योगायोग” में वर्गीय आभिजात्य के सामाजिक जीवन का अतः चित्र उपस्थित किया गया है। यह उपन्यास वर्गाल के विस्तृत हो रहे सामंतीय शक्तियाँ और उदीयमान वर्गिक वर्ग के सब सम्पन्न उद्भूत अहंकार और परंपरागत नैतिकता के प्रश्नों को उठेरता है। चरित्र-चित्रण के सूक्ष्म कौशल और युगीन जीवन चेतना के नए यथार्थ की विशुद्ध अभिव्यक्ति के कारण यह उपन्यास भारतीय साहित्य की एक अनुपम उपलब्धि है। रवीन्द्र काव्य की शक्ति और आत्मविश्वास का मूल जीवन प्रवाह की अवि

च्छिन्नता में है। देश से विराग और विदेश से अनुराग की जगह उनका साहित्य विदेश से विराग और देश से अनुराग का सन्देश देता है। रवीन्द्रनाथ स्वप्न-विलासी कलाकार नहीं—जीवन वास्तव के गहरे सरोकारों वाले कवि हैं। देश के समग्र जीवन से एकात्मकता और गहरी आत्मीयता रवीन्द्र-काव्य की प्राणशक्ति का उत्स है।

अंग्रेजों के प्रति उनमें आशुशय भ्रष्टा थी परन्तु अंगरेजी शासन और अंगरेजी साम्राज्यवाद का उन्होंने कभी समर्थन नहीं किया। जब कभी ब्रिटिश शासन की बर्बरता का समाचार मिलता—कवि की बाणी हुकार उठती। हुकार की यह आवाज़ बिजली की तरह देश भर में फैल जाती। विदेशी शासन और उसके दारुण कुश्रुत्या की जो प्रतिक्रिया होती है और उसका विरोध जो रूप लेता है उसकी एक झलक उनका उस पत्र में देखी जा सकती है जो उन्होंने सन् १९०० में सी० एफ० एण्डज को लिखा था—‘स्वदेशी और स्वराज आम तौर पर हमारे देशवासियों के मन में तीव्र उत्तेजना पैदा करते हैं, क्योंकि उनपर पूरी तरह हावी शोष के आबग का कुछ उत्ताप व अपने में लिए होते हैं। इस ताप और आन्दोलन से मैं अचूता हूँ, यह नहीं कहा जा सकता। पर जैसे भी हो, अपने कवि स्वभाव के कारण मैं उन उद्देश्यों को अन्तिम मानने में असमर्थ हूँ। मैं हमेशा अपने हृदय से बहुत अधिक का दावा करते हूँ। एक त्वाग हिन्दु पर पहुँचने के बाद मुझे लगता है कि अपने ही लोगों से जितना साथ मैं काम करता रहा हूँ—अलग हान को मैं बाध्य हूँ।’ इस शताब्दी के पहले दशक के अन्तिम वर्षों में राजनीतिक आन्दोलनों ने नाता तोड़ने के साथ ही राजनीतिक हलचलों में वे अपने को अलग नहीं कर सके थे। जतिर्योवाला राग के भीषण नरमहार ने कवि का महाहत कर दिया। उन्होंने अपना मान तोड़ा और विराग प्रदर्शित किया। ममाट द्वारा सन् १९१६ में प्राप्त “मर” की “पापि को लोटान का निश्चय करते हुए उन्होंने वायराय का लिखा था— ‘अब वह समय आ गया है जब सम्मान के विन्ने, हमारा आर दान के बहुत संदर्भों, हमारी लज्जा के और उजागर करते हैं। नहीं तो मेरा संघर्ष है मैं सभी विरिष्ट प्रतिष्ठा-निर्हा का त्याग करने उन

देशवासियों की कतार में खड़ा होना चाहता हूँ जिन्हें अपनी तथाकथित नगण्यता के कारण अमानवीय तिरस्कार भोगना पड़ता है” ।

हिटलर के नेतृत्व में फासिज्म व प्रचार का उन्होंने तीव्र विरोध किया । जापानी फासिस्ट कवि नागूची की उन्होंने भर्त्सना की ।

रूस की यात्रा ने उनके दृष्टिकोण में व्यापक परिवर्तन उपस्थित किया । रूस में महाकवि ने जिस समतामूलक और शोषणहीन समाजवादी समाज को देखा उससे प्रभावित हुए बिना वे नहा रह सके । सन् ३० के आम पाम प्रकाशित ‘रूस की चिन्ती’ इसका प्रमाण है । कुछ लोगों के मतानुसार सन् तीस के बाद के रवीन्द्रनाथ प्रगतिशील लेखक हैं । जो उन्हें बुर्जुआ और आभिजात्य वर्ग का लेखक मानते हैं वे भी उनके साहित्य की प्रगतिशील भूमिका में इनकार नहीं करते ।

सन् १९३८ में कलकत्ता में प्रगतिशील लेखक संघ का अधिवेशन सम्पन्न हुआ । रवीन्द्रनाथ इसकी अध्यक्षता करने वाले थे । अवस्थता के कारण उन्होंने अपना लिखित सन्देश भेजा । उनका यह सन्देश उनके प्रगतिशील और जनवादी दृष्टिकोण तथा साहित्य और संस्कृति संबंधी उनकी विचारधारा का ऐतिहासिक दस्तावेज है । ‘जनता से अलग रहकर हम बिनकुल अजनबी बन जायेंगे । साहित्यकारों को मनुष्यों में मिलजुल कर उन्हें पहचानना है । मेरी तरह एकांतवासी रहकर उनका काम नहीं चल सकता । मैंने एक सुदृढ़ तब समाज से अलग रह कर अपनी माधना में जो गुनती की है, उसे समझ गया हूँ और यही वजह है कि यह सन्देश दे रहा हूँ । मेरी चेतना का तकाजा है कि मानवता और समाज से लगाव रखना चाहिए और प्रेम करना चाहिए । अगर साहित्य मानवता से तादात्म्य स्थापित न कर सका तो वह अपने लक्ष्य और आकांक्षाओं को पा नहीं सकेगा । यह सत्य मेरे दिल में हम चिराग की तरह रोशन है जिसे कोई दलील या तर्क-वितर्क बुझा नहीं सकता” ।

साहित्य और कला संबंधी रवीन्द्रनाथ का यह उत्प्रेरक उनके प्रौढ़ चिन्तन का निष्कर्ष है जो अत्यंत साफ शब्दों में उनके मतों को सामने रखता है ।

रूस की नयी अर्थ व्यवस्था के बारे में वे लिखते हैं—“यहाँ जो चौड़ा सुन्न सपने अच्छी लगी वह है, दोलत के अशिष्ट गर्व का सर्वथा लुप्त हो जाना । अकेले

इसी कारण जनसाधारण में आत्म-सम्मान की चेतना बेरोकटोक बनी है। किमान और मजदूर जैसे दीन हीन वर्ग विरोधाधिकार प्राप्त वर्ग व धमण्ड के भारी बोझ को उतार फेंक, आज सिर उठाकर सीधे खड़े हो सके हैं। इससे मुझे जितनी खुशी हुई है उतना ही आश्चर्य भी हुआ है।”

रवीन्द्रनाथ ने कई बार विदेशों का भ्रमण किया। भिन्न समाज और अर्थ-व्यवस्था ज्ञाने दशा को करीब से देखा। परन्तु रूस-भ्रमण, और वहाँ की नयी समाज व्यवस्था ने उन्हें सर्वाधिक प्रभावित किया।

वर्तमान शताब्दी का चौथा दशक मनुष्यता के इतिहास का काला पृष्ठ है। यही वह कालखण्ड है जब अध राष्ट्रवाद, फामीवाद, साम्राज्यवाद और ताना-शाही का घिनौना रूप उभर कर सामने आया। युद्धोन्मादी यूरोप संस्कृति और नैतिकता के मूल्यों को ताक पर रख कर अपने उर्जर रूप में सामने आ गया था। हिटलर जर्मन नस्ल की श्रेष्ठता पूरे विश्व पर कायम करना चाहता था। मुसोलिनी रोमन-सम्राटों के चरण-चिह्न पर चलने को उद्यत था। मनुष्यता के इतिहास का यह घोर अधकारमय अध्याय था। रवीन्द्रनाथ विश्व की इन परिस्थितियों से बहद उदाम और खिन्न थे। उन्होंने अत्यंत तीव्र और रोष भरे शब्दों में साम्राज्यवाद और फामीवाद का विरोध किया। वे निराश होकर भी भीतर से टूटे नहीं थे। मनुष्य, उनके विवेक और मनुष्यता में उनकी गहरी आस्था थी। वे सच्चे अर्थों में मानवतावादी थे। निम्न पास्तिया में मनुष्य के प्रति उनकी अडिग आस्था और मानवता में उनकी अडिग विश्वास झलकता है—“जब मैं चारा और नष्ट डालता हूँ तो मुझे अभी मनुष्यता के जीर्ण खण्डहर बकार ढेर की तरह त्रिखर दीखते हैं। फिर भी मैं मनुष्य में आस्था खोने का घोर पाप नहीं करूँगा, बल्कि यह आशा करूँगा कि इस प्रलय के बाद और जब वातावरण नया तथा त्याग की भावना में स्फुरता जायगा तो उसका इतिहास का एक नया अध्याय खुलेगा”।

साम्राज्यवाद शासन युद्ध और घृणा पर आधारित समाज व्यवस्था के विरुद्ध रवीन्द्रनाथ का गहिरे मानव मन विश्व व्यवस्था, मानवीय व्यवस्था स्वाधीनता और गमनता का गन्धेश देता है। यही उनका गहिरे की प्रामाणिकता है। •

काव्याञ्जलि

कवि-प्रणाम



सूरज की किरण-किरण बाँट रही है इनाम
कविता ने टाँक लिया जूड़े में एक नाम
बेला के फूलों से हल्दिया हथेली पर—
गीताजलि लिखती है नन्हा-सा कवि प्रणाम *

गीताजलि की प्रतीक्षा



मेरी शताब्दी के सूर्य
 तुम्हारे जन्म दिन का गीत
 गाती है, आज भी काल वैशाखी—
 साखी ह जवा कुसुम और लाल कनेर की पखुडियों
 जिन पर हर साल लिख जाती है एक नया आग्रह
 जब कभी दिशाओं को चीरती—
 तुम्हारी जैसी कोइ कवि मूर्ति सभरती है
 तब कविता कुछ और निखरती है

आततायी अँधेरा सदास हो जाता है
 रोशनी जीवन पिखेरती है
 हवा खशबू रौटती है—
 और एक कविता की सुबह से
 एक अकविता की सुबह तक

धृवदेव मित्र पाशाण

कषान्द्र रथीद्र क प्रति

रवीन्द्रनाथ



रवीन्द्रनाथ

जन्म दिन पर करता हूँ तुम्हारा आह्वान
आओ जहाँ भी हो उत्तरो भू पर
रच दो एक नया गान ।

नही है कहीं अजस्रधारा आनन्द की भुजन में
नही है शीतलता
मची है जहाँ-तहाँ ग्राहि-ग्राहि
नीचा दिखाने की हो-
हिमा, तोड़ फोड़ ।

एक बार आओ न
शस्य श्यामला घरती पर
खो, बह हो गयी है रक्त-गर्भा
और उस पर रहने वाले
आदमी का रक्त पड़ गया है ठण्डा ।

रवीन्द्रनाथ, आओ न एक बार
और अपने गीता का नया भाष्य चखते जाओ
आदमी ने सीख लिया है अपने चलना

और जा भी द उसका साथ
उन्हीं को नाग बन डँसना ।

सत्ता और स्वार्थ
जय हो जाते हैं एवार्थ
तब कितना रिपेला हो जाता है दूष
माताओं के स्तना न
जिनका पान कर रक्तरीज पीढ़ी पनपती है
दिए की लौ भी तब अपने तक स्मिटती है ।

रवीन्द्रनाथ
आओ न एक बार
जहाँ भी हा, उतरो इस भूतल पर
दम्बो, बुद्धिजीवियों का तांडन नाच
पुरस्कार, प्रलोभन व प्रभुपद गंगीत पर ।

कविता महसूस करने लगी है अनाथ
प्यारे रवीन्द्रनाथ
चित्तेरे रवीन्द्रनाथ
एक बार आरु
इस जन-नाथ का चित्रांकन कर जाओ

आओ
माहग कर, पौन रंग
जग भारत भूमि पर आओ
र रहा हूँ तुम्हारा आगमन
रच सरो
तो रच दो एक नया गाथा ।

रवीन्द्रनाथ
आओ
सिंही की भी कलम की नोक पर
बैठकर गाओ । •

नीलम श्रीचास्तव

कवि गुरु रघोन्द्रनाथ—एक स्मरण



मने तुम्हें जव भी देखा—

पूरे प्रकाश वृत्त में देखा,

मने तुम्हें जितना जाना

मनुष्य की सौन्दर्य चेतना की
 सुगन्ध में जाना,
 तुम स्याह मतह बाने सरोवर में
 एक किरन-फूल जैसे थे जिसकी नाल
 कहीं बहुत गहरे
 अमृत-स्रोत से जुड़ी थी

कलाएँ तुम्हारे अस्तित्व की पूजा थीं
 और प्रतिनिम्ब भी
 तुमने अनुभूतियाँ वो शब्दाँ व हीरामन-पद्म दिए
 तुमने घरती की महिमा को
 सबिदना की बाँसुरी पर गाया
 तुमने मनुष्य के भीतर के ब्रह्मांड को जगाया
 सगके सिर की उच्चता की कामना की तुमने
 सगकी अशेष सम्भावनाओं की वन्दना की तुमने

तुम्हारा भावलोक एक सुदीर्घ इन्द्रधनुष
 की तरह पूर्व से पश्चिम तक तना था
 जिसमें विभिन्न मन्त्रियों के बालातीत रंग थे
 जिनका मर्म
 लभेय मनुजस्य की गरिमा में रेंगा था

तुमने जय पराजय, हर्ष शोक व इतिहास ॥
 गुजर कर इस देश की
 अदृष्ट जीवन्तता को टरा था
 अपने विश्वास, आशाओं-आकांक्षाओं को
 कलाओं की सुगठित देह पर उकेरा था
 तुम्हारा मन अन्धरीय का तन्मयी श्रुति
 एक नद भोर का चित्तेरा था ।

मनमोहन ठाकौर

नमस्कार ग्रहण करो, ओ द्रष्टा



कितनी गौरवशाली परम्परा को
बहन कर रह थे तुम,
वाल्मीकि, बद्धास,
कालिदास, तुलसीदास ।
जलियाँ वाला में जन्म जालिम अंग्रेजों ने
हज़ारा कौश पक्षियों का
एक साथ कर डाला बध
तुम्हारे करुणाद्रि अतस से भी
निम्सृत हा सठा था एक
अनुपम अनुष्टुप छन्द ।

घरती पर दूमरा रावण जन्म
आया था हिटलर का,
तुमने नोगूची व माध्यम से
दिया था अधिकार स्पष्ट ।

मानव की उच्चतम स्थिति के ओ गायक,
 स्तुतता स्वर्ग में उन्नत शिर
 भारत के जगने की दमित आकाक्षा को
 सर्वप्रथम वाणी देने वाले कवि,
 अंतर के नमस्कार ग्रहण करो ओ द्रष्टा ।

भारतीय वाङ्मय का गरिमा प्रदान कर
 गाये अजल गान शान्ति के,
 स्वप्न दग्धा तुमने, ममस्त भूमण्डल को
 शान्ति निशेकन में परिवर्तित करने का ।
 किन्तु आज युद्ध के दमामे जय वज्र उठे
 सुट्टी भर मानव-शत्रु,
 धरती को राख जना देने का
 धुनित पङ्कज जय रच रह,
 हमें गृह आते हा याद गुरुदेव तुम ।

एत मात्र तुम ही गा सकते थे—
 “करता नहीं प्रार्थना, निपत्ति में रक्षा करो,
 बचल वर दा तता, डर न लगे, मेरे प्रभु
 भीषण आपत्ति से, विपत्ति से ’

दामस्व-फाल में तुमने हम अस्मिना दी
 भयरहित होना सिखनाया था हम को,
 विश्वास न जाना था भारत का गौरव फिर
 पङ्कज गीताजलि से ।

आज फिर तुम्हारे स्मृति-सूत्र में
 गुंथ कर हम तुम्हारे ही श्रवणी,
 यन जाँचें भित्ति-भित्त रंगा के जला की
 माला जिनकी सुगन्धि, दमा दिशाओं में जा बिटके,
 म नयना जिग दरम कर इठला गर
 धारण कर यम पर मदनन ।

रघोन्द्रनाथ ठाकुर के प्रति



नमन है तुमको बारंबार

कल्पना के वरिष्ठतम फूल

भारती की बीणा साकार ।

नमन है तुमको बारंबार ॥

दीखते नाना भाषा भेद
 रहन की रीति, रंग, परिधान ।
 फूटती अन्तर में अविच्छिन्न
 तरल सी एक करुण रस-धार ।
 तुम्हारा ही चितित सद्गार ।
 नमन है तुमको बारंबार ॥

भ्रमण कर तुमने देश-विदेश
 दिए मानवता के संदेश ।
 मिला पश्चिम-पूरब के रंग
 बना अनुपम रचना-संसार ।
 स्तम्भित चकित विश्व साभार
 नमन है तुमको बारंबार ॥

बन्दिनी माँ के प्रतिभा सूर्य
 बजाकर आर्य सस्कृति तूर्य
 विश्व से लिया प्रथम स्थान ।
 विद्वत् नयन का स्वर्ण विहान ।
 हुआ गत गौरव का सद्धार ।
 नमन है तुमको बारंबार ॥

सगरी एक विधा तो नहीं
 कहाँ, बोलें हम, तुम हा नहीं ?
 तुम्हारा पारर पारम परम
 हुआ हर कला अयम को हर्य ।
 रहगा युग युग तरु अयकार ।
 नमन है तुम को बारंबार ॥

कवि गुरु के प्रति



कवि कुल में कवि बहुत हुए हैं
तुम क्या उनमें बहुत बड़े हो
फिर क्या कारण है तुम कवियुग
सब से बिल्कुल अलग खड़े हो

कवल कविता नहीं सुनाई
जन-गण के सँग राग मिलाया
विद्या कौन-सी तुमने छोड़ी
जिसको आगे नहीं बढ़ाया

जीवन सारा तुमने अपना
किया सृजन को अपित पल पल
बच्चों से बूढ़ों तक पूरी—
पीढ़ी को दे साहम-सम्बल

गीता की अजलि में तुमने
दुनिया भर के फूल सजाए
दे अपना मगीत विश्व को
प्रेम, शान्ति के स्वर गमकाए •

कवि प्रणाम



रूप-गिन्धु में डुबकी लेकर
अन्तरतम का रत्न महान
लाये थे तुम धरती तल पर
निश्च चेतना का वरदान ।

मानव मानव की अभिरक्षा का
पैलाया गजल प्रकाश
पतित उपेक्षित जन क आहत
मन में जागी मृतन आश ।

प्रकृति सुन्दरी की मुद्राएँ
मघतीं तेरे व्याकुल प्राण
राशि राशि मौन्दर्य, तरंगों में
उठ उठ कर गाता गान ।

भाषा का दी नयी भगिना
भाषा तो सम्राज्यकार
करिबर, नूने बिया प्रेम से
बकिता रानी का गृ गार ।

बिना वृन्त प्रफुटित पुष्प ज्यों
रक्त दी कितनी छत्रिखियाँ
मेरी मलय तोर दर ताजी
रूप गर्विता स्फुरिदाँ ।

प्रियतम आते, तुम्हें नाद में
देख, लौटते छोड़ निशान,
मर्म व्यथा यो दे सकसाते
वे तेरे रचना के प्राण ।

जीव जगत क्या, जड़ प्रस्तर तक की
तुम सुनते करुण पुकार
रखाओ मं भरा रग तो
प्रकट हुए अदभुत आकार ।

भाषा के अनुकूल स्वरों से
गीतों को दी नयी उड़ान
स्वर शिल्पी, संगीत जगत को
तेरा यह अमूल्य अवदान ।

देने को आकार कल्पना को,
तत्पर तुम हे कर्मण्य,
विविध विधाएँ हुईं, परस पा
तेरे प्रातिभ कर का, धन्य ।

तेरे प्राणा में गुँजी थी
मोहन की सुरली की तान
कभी व्यथा के कभी हर्ष के
स्वर सुनते थे तेरे कान ।

तुने किया मनीषी, जग में
भारत का गौरव विस्तार
उपनिषदा को तुने गाया
युग वाणी में विविध प्रकार ।

तेरा चित्त बना था जग में
प्राणि मात्र का तीरथ घाम
श्रद्धा से अवनत हम करते
सर्वमनीषी तुम्हें प्रणाम । ❀

पिश्य कथि रघीन्द्र के प्रति



साहित्य उद्यान के ज्ञान वृक्ष !
 तुम्हारी झालियों पर जत्र तय
 अलगिन पक्षी बसेरा करते रहे—
 कुछ तुम्हारी पत्तियां, टहनियां पर बैठकर
 तुम्हारे स्पर्श गानिध्य में
 केवल चहकते रहे, डोलते रहे—
 दिव्य मवेदन वायु के घात, प्रतिघात जनित
 तुम्हारा नाद, छंद, संगीत,
 सुनते रहे, झुलमते रहे—
 तुम्हारी धिरवन, भगिमा, चित्रावृति
 देखते रहे, किन्नरते रहे ।
 किंद कुछ लगनशील अपनी नन्हीं मन्हीं चौचो में,
 तुम्हारे तृप्त, पत्ते—
 अपनी नन्हीं नन्हीं गोमो में,
 तुम्हारा सुवास, मौरम—

जो कुछ भर सके,
जो कुछ पा सक,
भरकर, पाकर छड़ गये ।
उनमे अपने अपने नीड को बनाया, सजाया—
अपने अपने नीड को महकाया, भरमाया ।
एक बोधि वृक्ष के तने
कभी एक हताश गौतम बैठा था
और बुद्ध बन गया ।
सुना नहीं उसके बाद
फिर कोई दूसरा गौतम
उसके तने बैठकर बुद्ध बना हो ।
किंतु हे बोधि वृक्ष !
शांति निःकलन की पुण्य स्थली में,
तुम्हारी
शास्त्रा-उपशास्त्राएँ,
हो गई हैं
अमर बलि, शाश्वत, कालातीत,
विराट, विशाल विस्तृत
काव्य-नाट्य-नृत्य
शिल्प-संगीत कला
और न जाने कितने कितने रूप आकारों में ।
तुम्हारी छाया तने बैठकर

अधरार न भटक्ते,
निराश, दिग्भ्रम
माहिल्य-संगीत कला पिपासु
न जान कितने
गौतम
बढ़ हो गए,
बुद्ध हो रह
और हाते रहगे
अनन्त काल तक । *

पिशप कवि क प्रति



गत्य शिव सुन्दर ते

काव्य सिन्धी ।

गुप्त स्वर दो—

५ गा गरु वृग्गारे गीत

भौतिक सुख-धारा में तैरते रहकर भी
 तुमने सँजो ली
 निस्संग कमल की सारी सुषमा
 जीवन की गति, ताल, लय, गरिमा
 सब तुम्हारे छन्दों के प्राण
 प्रकृति के स्पन्दनाँ को
 जन जन की घड़कना की
 अपने शब्दों में समोने वाले ओ कवि !
 मनुजता की जड़ बहुत गहरे
 धरती में रोप दी तुमने,
 अंदर ही अंदर

अफ्रीका के महावृक्ष की
 काली जड़ों से छुटती
 सह अनुभूति के उजाले में फैलती
 हृदय की ललक बनकर
 मुक्तिकामी शिराएँ तन गई
 लाल-लाल प्रतीक-विम्ब मुक्ति-धारा में बहते-बहते
 राश्ट्रा देश के मुक्ति-योद्धाओं के सीने में
 आज़ादी के अगारे बन गए
 उनके होठों पर अय-गान के फुहारे बन गए
 हाथों में अशक पताकाएँ
 क्रांति की शलाकाएँ
 बन गई नव संस्कृति की आधार शिलाएँ ।
 तुम्हारा भाव निर्धर अजल काल-कारा को तोड़
 चलसित उन्मत्त मरुत से करता होड़
 अतीत को सहेजता, करता है भविष्य का सञ्चारण
 युद्धों का निवारण
 स्वार्थों का सहरण
 सत्य का सधारण
 सत्य शिव सुन्दर के काव्य शिल्पी,
 सुधे स्वर दो ।

यहाँ सब व्यरियत है



मुनो, रवि ठाकुर,
यहाँ सब व्यरियत है
मौसम अब भी लौटता है ।

कृष्णचूड़।

अब भी फूलते हैं ,
हवा की अँगुरियाँ में
अब भी दहकती हैं
जीने की आग,
आँखों की झील में छिलते हैं
गंभिर व रसकमल ।
लेकिन शहर के मातमी चहरे पर,

कहा, कोइ फर्क नहा आता ।

हमारी ठटी नमा ग जागता है,

न कोइ उमग, न यमन्त ।

अब बदल चुक हं

जमान क राग-रग ।

वो जिसे तुम कृष्णकली कहते थे

दोलत न सानपणी हिरणा के लोभ में,

अपने यदन के खेमे में

नाजायज घन्था चलाती है ।

वा जिसे तुम मनु-पुत्र कहते थे

अब, रक्षक क वजाय

भक्षक की भूमिका निभाते हैं ,

अपनी गरज में अन्धे ये आदमखोर,

नचा तक के निवाने छीन ले जा हैं ,

प्यार के वजाय

फरेत्र की पदावली गाते हैं ।

तुम रुश हो न, रवि ठाकुर,

कि दुनिया ने तुम्ह भुलाया नहा ।

लेकिन, सच कहना

तुम्हारे विश्वास को झटलाते हुए,

क्षमा, दया, शान्ति की खिली उड़ाते हुए,

सन्मानियत के नाम पर

दरिन्दगी का जश्न मनाते हुए

तुम्हें याद करने के नाटक में,

तुम्ह भुलाया नहीं ।

गनीमत है, रवि ठाकुर,

तुमने यह कुछ नहीं देखा,

वर्ना सुखी होने के वजाय

दु खी होते

अपने सम्मान न आयोजित जश्न में,

हरगिज शरीक नहा होते । *

कवीन्द्र
रवीन्द्र
की
कुछ
रचनाओं
का अनुवाद

ताजमहल

यह बात तुम्हें थी ज्ञात,
हिन्दुपति शाहजहाँ,
काल के स्रोत में चिरविलीन हो जाते हैं
जीवन, यौवन, सम्पत्ति, मान,
थी यही साध, सम्राट, तुम्हारे प्राणों की
केवल तब अन्तर्व्यथा चिरसन बनी रहे ।

घग्न सम कठिन यह राजशक्ति
रक्ताभ साध्यवेला सम तन्द्रालय हो,
या हो जाय लीन ,
थी यही आश मनमें
केवल तब दीर्घश्वास
सञ्चलवसित निरंतर हो नभ को सकरुण कर दे ।
हीरा-मुक्त-माणिक शोभा
सब ही विलुप्त यदि होना है,
ज्यों शून्य व्योम के
इन्द्रजालमय इन्द्रधनुष की शुभ्र छटा ,
नस रहे शेष
नयनों के जल का एक बिन्दु
काल के गाल के ऊपर शुभ्र समुज्ज्वल-सा
यह ताजमहल ।

हा-हा रे मानव हृदय !
 समय ही नहीं तुम्हारे पास
 कि बारम्बार किमी को देख सको
 तुम मुड-मुट कर !
 यह अर्धभान्य !

जगके हर तट पर होकर ही
 जीवन की सीधे धार में सदा बह हो तुम !
 ज्यों एक हाट से ले थोड़ा
 फिर घर लौटो हो रिक्त दूसरी हाटों में ।

दक्षिण के मंत्र गुजरण में
 तब मधुवनमें
 है बासंती माधवी मजरी भर देती
 जिस क्षण चंचल मालचांचल
 (फिर उसी समय)
 गोधूलि बिदा की आकर बिखरा जाती है
 भूल में छिन पौन्दुरियों की
 निर्युल तो है अवकाश नहीं !

फिर
 शिशिरनिशाने करते हो
 प्रस्फुटित निरुजों में तुम नूतन बुन्दराजि
 हेमन्तराज के अभुमिक्त
 आनन्दगाज की झोली एक खजाने की !

हा हृदय !
 तुम्हारा यह रसचय
 निशिदिन येन पथ प्रान्ता में फँका जाता !
 है नहीं तनिक अवकाश,
 तनिक भी नहीं समय !

महाद,
 इमी बारम्बार तब शङ्कित मन में

सौन्दर्य भुग्ध कर हरना चाह

समय हृदय ।

डालकर कौन सी जयमाला तबन्ध मध्य

इस रूपहीन मृत्यु को

अमर, अपरूप साज में धरण किया ?

था नहा क्वाकि अवकाश

तुम्हारे पास—

प्रारहो मास विलाप किया करते,

इमलिये

चिरसन मौनजाल के ढाँघ लिया

अपने अशान्त वन्दन को

कठिन बन्धनों में ।

ज्योत्स्नामयी निशि के यामों में

निज प्रेयसि को जिस सम्बोधन से तुम पुकारते

रौले-से,

चुपचाप स उम बुलाने को

तम नमी जगह

तुम चने गये रखकर अनत के कानों में ।

खिल उठी तभी

प्रेम की करुण कोमलता सी

सादर्य पुष्प पुञ्जा, प्रशान्त धापाणी में ।

सम्राट् कवे ।

ह यही तुम्हारी हृदयच्छवि,

हे यह तब नूतन मेघदूत

अन्भुत अपूर्व छन्द में,

गाय में,

सम अलक्ष्य की ओर निरंतर उठता है—

है जहाँ तुम्हारी बिरहिणि प्रेयसि छिपी हुई

भीर के अरुण आभासों में
 मलिना संध्याम्यर के मकरुण विश्वासों में,
 पुनम निशि की अपरूप चमेली के लावण्य विलासा में ।
 उन भाषातीत सुदूर तटा में
 जहाँ पहुँच कर
 लौट लौट आते हार, कगाल नयन ।

युग युग में तब मौन्दर्य दूत
 काल के पहरण में उच कर
 है चला आ रहा देता यह सन्देश मौन—
 कैसे भूलूँ,
 कैसे भूलूँ
 प्रियतम !
 तुम्ह कैसे भूलूँ ?

हे महाराज !
 तुम चले गये हो आज ।
 तुम्हारा राज्य
 स्वप्न गम भग हुआ,
 है ध्वस्त हो गया मिहामन

तब मैत्र शक्ति—
 जिनके पदभार तने धरती,
 करती टलमल
 उगरी स्मृति आज थापु में भर
 दिधी के पथ की भूल गनी
 चन्ती फिरती ।

जगदीश्वर करते हैं,
 अरु गन्दी चारण,
 चरुत के तम पत्र स्वर से अरु
 नीरते निनारों के तार ,

तब पुरसुन्दरिया के नूपुर की रुनझुन धुन
 अत्र ध्वस्तमहल के कोनों में
 झिल्ली की झकारों में होकर मृत्युलीन
 है रुला रही, रे, नैशगगन ।

फिर भी

यह अमलिन दूत तुम्हारा भ्रान्तिहीन,
 चिर क्लान्तिसुक्त
 कर तुच्छ राज्य निर्माण-नाश
 कर तुच्छ मृत्यु जीवन का
 आरोहावरोह,

युग-युग से
 यही एक्स्टर से
 चिर विरही की वाणी में कहता आया है—
 कैसे भूलूँ,
 कैसे भूलूँ
 प्रियतमे ।
 तुम्ह कैसे भूलूँ !

सब मिथ्या है ।
 है कौन कि जो यह कहता है—
 तुम नहीं भूल पाये हो,
 भूल न पाओगे ?

है कौन कि जो कहता है—
 तुमने नहीं गोल कर डाल दिये—
 स्मृति के पिंजरे के द्वार अरे !
 क्या योंध जान भी रक्खा है
 तुमने अनीत का अमृतिमिर
 निज प्राणा में ?
 क्या नहा सुत्तिपथ में विस्मृति क

अब तक भी
बह नहीं आ सका है बाहर ।

यह कैसा है अद्भुत, चमत्]

समाधि-मन्दिर
एक ही जगह
आज तक चिर स्थिर बना हुआ,

घरती थी रज में रह कर भी
आवरण स्मरण का दे इसने
ढँक रक्खा बड़े जतन से निज में भरण मौन ।

है कौन बाँध पाया जीवन ।
अम्बर का प्रति नक्षत्र बुलाता है समको,
है लोक लोक में,
ज्योति ज्योति में
नय-नव पूर्वाक्षल में समका आमरण ।

तोड़ कर स्मरण की अग्नि
विश्वपथ पर होकर बन्धन विहीन
बह चला जा रहा द्रुत गति से ।

ह महाराज ।
कोई भी महाराज्य तुमको
है नहीं कभी भी पनड मका

ह चिर-विराट ।
यह सागर गयी पृथ्वी तुमको भर नहीं सकी—
तुम इंगीलिन—
इगरी टुकरा कर चने गये—
मृत पात्र मर्या
शाने पर रोष जीवनी-सब ।
तुम निज दश ह भी हो महान,

इमलि ! तुम्हारा यह जीवन रथ बार-बार
पीछे तब-कीर्ति छोड़कर जाता जाता है ।

इमलि—

नहीं तुम यहाँ,

किन्तु है निम्न तुम्हारा वर्तमान ।

जो प्रेम प्रगति करना ही नहीं जानता था

निम्न पथ राक सिद्धाया अपना सिंहासन,

सगरी बिलास सम्भाषण

पथ की भूल बना

द निम्नटा पडा तुम्हारा दाना चरणा में

तुम इसी भूल का माप गये फिर वही प्रेम ।

बुँड गीत

रूपान्तर प० छविनाथ मिश्र

मूँज आनन्दधारा बहिछे भुचने

बह रही आनन्दधारा भर भुवन

अमृत रंग निशिदिन सङ्गने प्राणमय उच्छल गगन ।

मान करते चाँद सूर्य नित्य निर्भय

दीप्त रहती है सदा वह ज्वालि अफय

हिरण पी पी कर धरा का हरा लहरा भरा जीवन ।

मया यहाँ बैठे स्वयं खोप हूँ

स्वार्थ में यो दूने का भला क्या कारण अफारन ।

छुद्र दुख को उच्छ गमझो

सुख मन रा मग्यो-पुष्टो

प्रेम से भर लो दुलम घर शून्य जीवन, हृदय आँगा ॥

ओ रे भीरू तोमार हाते नाइ भुवनेर भार

अरे । भीरू तेरे हाथों में नहा भुवन का भार
कर्णधार पतवार सहजे, वही करेगा नैया पार ।

तुम को क्या लेना देना तुफान, उठे यदि नित अविराम
चुप चुप देख खेल सहरो का चिन्ता का क्या काम
आने भी दो गहन रात को, होने दो धँधियार ।
कर्णधार पतवार

देख एकटक पश्चिम में तू मेषदेँका पूरा आकाश
देख भगन मन पूर्व दिशामें तारक शोभा दीप्त प्रकाश
अपने जितने सगी साथी जो भी सगे तुम्हारे
उनकी रक्षा कर लोगे क्या अपनी गोद पसारे
झट झझा से दिल दहनेगा, जाग उठेगा हाहाकार ।
कर्णधार पतवार

मूल ण्ड बधाटा धरे राखिम् मुक्ति तारे पेनेइ हये



इतनी मान मान ले प्यारे । मुक्ति तुझ ता पाना ही है
पथ अन्त की ओर गया जो उम पर तुझी जाता ही है

मुँह बँठ ले गाते-गाते नाच खान दो निर्भय मन म
रस होकर फल में दुखो लहर धरद न ना ही है ।
भँवर अगर तुमका भ्रमाण, छुटकारा ता पाना ही है
यात्रा-पथ पर बौद अनगर, तै रादर जाना ही है

सुख की आशा की तुम जूझ, जर जर मन भाव गँवाये ।
जीवन हो परिपूर्ण जसनि मार मान की खाना ही है ।

मूल प्रथम आदि तथ शक्ति



आदि शक्ति त्वम, प्रथम ज्योति त्वम
परमोज्ज्वला ज्योति तेरी ही
तेर रही है गगन गगन में ।

नित्य प्रवाहित तरी वाणी, तेरा ही आनन्द विनाश
जाग रही नित नव-नव रम बन
हृदय हृदय, व्योमन मन मन में ।

तेरे चिदाकाश में भामित सूरज चाँद मितारे
प्राण तरंगें उठें पवन में ।
तुम्हा आदि कवि त्वम ही कविगुरु
गूँज रहा है मंत्र तुम्हारा
छन्द छन्द में भुवन भुवन में ॥

मूल जीवन यथान शुक्ल जाय करुणा धाराय रसा

जीवन जब नीरस हो जाए रुकावट बनकर आशा
चुके जाये माधुरी तभी हम गीत गुनारम बनकर आशा ।
जब ही जाए धर्म प्रदलनर, दैव जाए जग दिशा दिशातर
हृदय प्राप्त में है जीवन धन । धीरे धीरे पग र आशा ।
दीन दीन जब मन हो जाए, स्वार्थ मिमट कर अब क्या आशा
है उदार तब द्वार खोलकर रथराजगी मनाकर आशा ।
जब मागना बदलकर बनकर कर दृष्टि का अर्थ निरंतर
है परिवर्तन है अतएव हम बड़े तेज तब बनकर आशा ।

मूल पारबि ना कि जोग दिते एइ छन्दे रे



याग रे सक्ोगे क्या तुम हम छन्द म
दहने-यहने और तोडने के ही हम आनन्द म ॥
बान लगाकर सुनले प्यारे, दिशा-दिशा म गगन मझारे
मरणबीण पर क्या सुर बजता, सुरज तारे चन्द्र मे—
आग जला दीकते हुए इस जलने के आनन्द मे
पागल करनेवाली धुन सुन पता न धाए कहीं रात-दिन
पीछे मुडकर नहीं निहारे, रह न बन्धन बन्ध मे—
गिरते पडते दौड भागकर चलने के आनन्द म
वे आनन्द चरण जब पडते, छह मृतुओं के नृत्य गमकते
उच्छल घरती मुखरित, रग-रग मे गीत-गन्ध मे—
सब कुछ छोड-फेंक देने के मधुर मरण आनन्द मे ॥

मूल दे मोर खिल पुष्प तीर्थें जागो रे धीरे



पुष्प तीर्थ बना मे जागो, हे मेरे मन धीरे
इस भारत के महामानवी सुषरित गागर तीर ॥

परमानन्द उदार छन्दमय वन्दन उन्हें निबदित
 नदिया की जपमाला नेत्र
 ध्यान भग्न ये पर्वत प्रान्तर
 लग्ना यहाँ तुम नित्य नवीना परम पवित्र धरित्री रे

पता नहा किमका आवाहन, कितनी-कितनी जनधारा
 खोत अनाघ यहाँ से आया लहरा जल-ममृद्र न्यारा,
 आर्य अनाथ यहाँ जो जितने आए जन जो द्राविड चीन
 सुगल पठान दृण-शक दल तल एक देह में विलगित लीन

आज जुला पश्चिम का द्वार
 मग्न लाते नित नय सपहार
 लेना-देना मिलना जुलना होगा हरदम घड़ी घन्टी रे

आओ तुम हे आर्य-अनाथ हिन्दू तुम या मुसलमान
 आओ-आओ तुम अँगरेज आओ आओ तुम ख्रीष्टान
 आओ ब्राह्मण शुद्ध करो मन सग का हाथ धाम लो बढकर
 आओ पतित परिगणित उतरे भार अनादर का जो सर पर
 करना है माँ का अभियेक
 मगलघट भरना है शेष

मय का पावन परस सहेजे उग्र पवित्र तीरथ नीचे
 आज नेश क महामानवी सुखरित सागर तीरे ॥ ५

